Research Paper IMPACT FACTOR VALUE : 5.983 | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 11 | ISSUE : 3 | MARCH 2025

प्राचीन भारतीय कृषि प्रणाली

सुनील कुमार पाण्डेय [1] | डॉ. दानपति तिवारी [2]

[1] शोध छात्र, संस्कृत, डॉ. राममनोहरलोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.).

[2] प्रो. एवम् प्राचार्य, संस्कृत-विभाग, का.सु. साकेत पी.जी. कालेज, अयोध्या (उ.प्र.).

ABSTRACT:

भारत में चट्टानी मिट्टी से लेकर जलोढ़ मिट्टी एवं विविध प्रकार की जलवायु स्थित है, जो कि विश्व की सर्वोत्तम भूमियों में से एक है। भारत में प्रकृति प्रदत्त सिंचाई प्रणाली और सतत् बहने वाली नदियों ने उत्पादक क्षेत्रों का विस्तार किया है।

कृषि कार्य की सुगमता के कारण ही मनुष्य ने नदियों के किनारे प्रमुखता से अपना स्थान बनाया। वेदों में कृषि का उन्नत स्वरूप मिलता है। अन्न को प्राण माना गया है।

KEYWORDS:

कृषि विज्ञान का स्वरूप एवं विकास, कृषि सम्बन्धी प्रमुख ग्रन्थ, प्रागैतिहासिक काल में कृषि, भूमि के प्रकार, कृषि में प्रयुक्त उपकरण, बीज और बुआई, खाद, पौधों की सुरक्षा, पशुपालन, उद्यनिकी, उत्सव ।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
7th March 2025	8th March 2025

प्रस्तावना:-

कृषि विज्ञान का स्वरूप एवं विकास

'कृषि' शब्द कृष् धातु से निकला है जिसका अर्थ है कूंड बनाना या जोतना। प्रारंभ में कृषि शब्द से हल चलाने का ही बोध होता था। आचार्य पतंजलि ने इस शब्द को विस्तार दिया और लिखा कृषि का अर्थ केवल हल चलाना ही नहीं, अपितु बैल तथा कर्मकार आदि के लिए भोजन का प्रबंध या प्रतिविधान भी करना है।

नानाक्रियाः कृषरर्थाः नावश्यं कृषि विलेखन एवं वर्तते किं तर्हि प्रतिविधानेऽपिवर्तते, यदसौ भक्ता बीजबलीबर्दः प्रतिविधानं करोति स कृष्यर्थः।

वेदों में कृषि का उन्नत स्वरूप मिलता है। वैदिक देवता पूषन्, कृषि कार्य में प्रयोग किये जाने वाले पशुओं के संरक्षक हैं। अन्न को प्राण माना गया है। अन्नं वै प्राणाः, अन्नं ब्रह्म विजानीयात् (ऐतरेय ब्रा. 1.17.5)। अन्न ही पाण है, अन्न ही ब्रह्म है। अन्न एवं कृषि में अन्योन्याश्राय संबंध है। अथैनं विकृषति, अन्नं वै कृषिः (श.प.ब्रा. 7/2/2/6) कृषि ही मनुष्य को धन, धान्य से पूर्ण करती है। ऋग्वेद में हल-बैल के प्रयोग, सिंचाई के साधनों की चर्चा है। धान, गेहूँ एवं जौ मुख्य फसल थी। अन्न के भंडारण एवं कटाई आदि का भी निर्देश है (ऋ.5/6/12/9.30)। पतंजलि ने लिखा है कि यह देश समृद्ध इसलिए है क्योंकि यह अपने पशुओं और कृषि पर ध्यान देता है। महर्षि व्यास ने महाभारत में लिखा है कि यह आर्यावत, वार्ता (कृषि, पशुपालन, वाणिज्य) पर दृढ़ रूप से आधृत होने के कारण समुन्नत है। कृषि गोरक्ष्य वाणिज्य लोकानामिह जीवनम् (म.भा., शांति पर्व, 89.7)

वैदिक काल में कृषि का मुख्य साधन वर्षा ही थी। अतः इन्द्र से वृष्टि विरोधी वृत्रासर को मारने की बार-बार प्रार्थना की गई है जिसे इन्द्र ने अपने वज्र से मारा। वैदिक देवताओं में इन्द्र के सर्वप्रधान होने का कारण वृष्टि का अधिपति होना भी है। मरुत, वायु के अधिपति हैं। कृषि में वायु का योगदान भी कम नहीं है, वरुण, मित्रावरुण एवं पर्जन्य आदि देवता कृषि में सहायक हैं।

ब्रीहि, यव, मुद्ग, माष, गोधूम, नीवार, प्रियंगु, मसूरक, श्यामाक, तिल, उर्वासक आदि अन्न के नाम वेदों में उपलब्ध है। ब्रीहि के भी कृष्ण, आशु एवं महाब्रीहि ये तीन भेद बताए गए हैं (तै.सं. 1/8/10/1) 1 वर्ष में दो बार धान काटने का विधान था। (कौषीतकिब्राह्मण 21/3)। कृषिधन, कीट उपक्कस, जभ्य, पतंगा आदि कीड़ों का वर्णन भी है।

कृषि केवल धान्य फसलें उगाने का विज्ञान नहीं है। कृषि के अंतर्गत 'वृक्षायुर्वेद' का उल्लेख बारंबार किया गया है। आजकल वनस्पतियों या वृक्षों के विज्ञान को वनस्पति विज्ञान कहा जाता है जो कृषिशास्त्र का महत्वपूर्ण अंग है। धान्य फसलों के अलावा उद्यानों में लगाए जाने वाले वृक्षों की जानकारी भी आवश्यक है। यह उद्यान विज्ञान कहलाता है।

ऋग्वेद में प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उस समय तक कृषि का पर्याप्त विकास हो चुका था। कृषि मनुष्य के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन था। कौटिल्य अर्थशास्त्र की व्यवस्था के अनुसार जल, भूमि, बीज परिकर्म, व्याधि-चिकित्सा, पुष्प, रस, फल, गन्ध आदि कृषि कर्म के अन्तर्गत आते हैं।

कृषि कार्य की सुगमता के कारण ही मनुष्य ने नदियों के किनारे प्रमुखता से अपना स्थान बनाया। वेदों में कृषि का उन्नत स्वरूप मिलता है। अन्न को प्राण माना गया है।

अन्नं वै प्राणाः, अन्नं ब्रह्म विजानीयात्। (एतरेय ब्रा. 1.17.5)

ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है कि अन्न ही प्राण है, अन्न ही ब्रह्म है। अन्न एवं कृषि में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

अथैनं विकृषति, अन्नं वै कृषिः। (श.प.ब्रा. 7/2/2/65)

शतपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि कृषि ही मनुष्य को धन, धान्य से पूर्ण करती है।

ते कृषि च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति

कृष्टराधिरूपजीवनीयो भवति य एवं वेद।

(अथर्व. 8.10 (4) 12))

इस अथर्ववेदीय मन्त्र से स्पष्ट होता है कि कृषि और अन्न पर सभी मनुष्यों का जीवन निर्भर है। इसलिए कृषि विशेषज्ञ की शरण में सभी लोग जाते हैं।

ऋग्वेद में हल-बैल के प्रयोग, सिंचाई के साधनों का उल्लेख है। पुरातन समय में धान, गेहूँ एवं जौ मुख्य फसलें थी।

तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च। **(महाभारत शान्तिपर्व. 59.126)**

17 प्रकार के अन्नों का वर्णन है। अन्न के भण्डारण एवं कटाई का भी निर्देश है।

(कौषीतकिब्राह्मण 21/3) कृशिधन, कीट, उपक्वस, जभ्य, पतंगा आदि कीटों का वर्णन है। कुरु देश में टिड्डी के आक्रमण को बताया है **(मटची हतेषु कुरुषु) (छा.उ. 1/10/1)**

सुसस्याः कृषीस्कृधि। (यजु. 4.10)

यजुर्वेद के इस मन्त्र में उत्तम अन्नों की कृषि करने का उल्लेख है।

सम्मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सम्मा सृजाम्यरि रोघधभिः।

सोहं वाज सनेयमग्ने। (यजु. 18.35)

यजुर्वेद के इस मन्त्र में कृषि कार्य के लिए जल की आवश्यकता का उल्लेख है। इससे स्पष्ट होता है कि पुरातन समय से हमें फसलों की सिंचाई का ज्ञान था।

कृषिर्धन्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः। (कृषि पाराशर श्लोक 8)

कृषि धन (सम्पत्ति) एवं बुद्धि (मेधा) प्रदान करती है कृषि ही सभी जीव-जन्तुओं के जीवन का आधार है।

भूमि

कृषि का आधार भूमि है इसे ही हम मृदा या मिट्टी कहते हैं। भूमि, क्षिति और पृथ्वी पर्याय माने गए हैं। संस्कृत साहित्य में भूमि के अनेक पर्याय हैं हलायुध कोश में पृथ्वी के 37 पर्याय दिए गए हैं-

भूर्भूमिर्वसुधा वनिकसुमती धात्री धरित्री धरा।

गौर्गोत्रा जगती रसा क्षितिरिला क्षोणी क्षमा क्ष्माचला।।

कुः पृथ्वी पृथिवी स्थिर च धरणी विश्वंभरा मेदिनी।

ज्यानंत विपुला समुद्रवसना सर्वसहोर्वी मही।।

काश्यपी भूत धात्री च रत्नगर्भा वसुंधरा।

धराधारा च विज्ञेया तविशेषान्निबोधत।।

इतना ही नहीं, हलायुध कोश में काली मिट्टी (कृष्णमृत्तिका), पीली मिट्टी (पांडुभूम) उर्वर मिट्टी (उदकभूम) उर्वरा (सर्वसस्या), ऊसर आदि का भी उल्लेख है। 'अथर्ववेद' में पृथिवी सूक्त में भूमि के अनेकानेक गुणों का वर्णन हुआ है।

महाभारत में भूमि के गुणों में स्थिरता, गुरुत्व, काठिन्य प्रसवार्थता, गंध, संघातशक्ति स्थापना और धृति के नाम गिनाए गए हैं।

सामान्यतया 'भूमि' शब्द से उसकी सतह का ही बोध कराया जाता रहा है। राजा को समग्र भूमि का स्वामी कहा गया है। फलतः वह भूगर्भ स्थित संपत्ति का भी स्वामी समझा जाता था।

महाभारत में शांति पर्व (अध्याय 184) में विस्तार से दिया गया है कि पौधे भूमि से किस तरह भोजन ग्रहण करते हुए शरीर के विभिन्न भागों में कैसे पहुँचाते और उसका पाचन करते हैं, लिखा है कि जिस तरह कमलनाल को मुख में लगा कर पानी पीया जा सकता है उसी तरह वायु की सहायता से पौधे (जड़ों के द्वारा) पानी पीते हैं (पादप)।

इतना ही नहीं, वृक्षों को चैतन्य बताया गया है। गर्मी में इनके पत्तों का झुलसना, वायु, अग्नि और विद्युत घोष से प्रभावित होना, गंध, धूप आदि से इनके रोगों का दूर होना और फिर से पुष्पित होना, मूलों द्वारा रस का पान करना, काटे जाने पर और विरोहण पर सुख-दुःख, वृक्ष के शरीर पर लता का लिपटना ये त्वक् शक्ति, श्रवण शक्ति, प्राण शक्ति दृश्य शक्ति के सूचक है।

कृषि सम्बन्धी प्रमुख ग्रन्थ

वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वराहमिहिराचार्य की वृहत्संहिता एवं चरक संहिता कृषि सम्बन्धी ग्रन्थ है। सबसे प्रमुख कृषि सम्बन्धी ग्रन्थ कृषि पराशर है जो कृषि शास्त्र का विश्वकोष है।

प्रागैतिहासिक काल में कृषि

पुरातात्विक विभाग के अन्वेषणों से पता चला है कि गग नदी के कुछ समतल भागों में चावल उगाया जाता था तथा जौ और बाजरा की खेती 7वीं सदी में हुई थी।

मेहरगढ़ (बलुचिस्तान) में प्राप्त हुए बाॅक्सनुमा जौ की खेती के लिए क्षेत्र अगली शताब्दी में अन्य फसलों की पैदावार प्रारम्भ हुई।

- अन्य अनाज जैसे- गेहूँ, जिल, सूरजमुखी, अलसी, सरसों, अरण्डी, हरे चने, काले चले आदि प्राप्त हुए।
- रेशेदार फसलें-कपास, ककड़ी, बैंगन की सब्जियाँ आदि प्राप्त हुई।
- फल-अँगूर, खजूर, बेर, कटहल, आम, शहतूत, काला बैर आदि प्राप्त हुई।

घरेलू पशुओं बकरी, कुत्ते, सूअर को पाला जाता था। उस समय मिश्रित कृषि एक ही समय दो अलग-अलग फसलें उगाने) की प्रणाली का भी ज्ञान था।

भूमि के प्रकार

सहि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्स्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः

आदद्धव्यान्यादर्दिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा।।

अघ स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां मरः शुभे न पन्थाम्।।

(ऋग्वेद 1/127/6)

ऋग्वेद में (अप्नस्वती) उर्वरा भूमि तथा (आर्तना) बिना जुती हुई भूमि का उल्लेख है। अमरकोश में 12 प्रकार की भूमि का वर्णन है।

उर्वरा सर्वसस्याढ्या स्यादूषः क्षारमृत्तिका। (अमरकोश 2.4)

ऊषवानूषरो द्वावप्यन्यलिंगौ स्थलं स्थली। (अमरकोश 2.5)

उर्वरा (उपजाऊँ), उसरा (बंजर), मरू (रेगिस्तान), अप्रहत (परती), शाड्वल (घास युक्त), पंकीकला (दलदल), जलप्रिया (जलयुक्त), कच्छ (पानी के समीप की भूमि), शार्करा (कंकड़ से भरे और चूने पत्थर टुकड़े युक्त), शकरवती (रेतीले), नदीमात्का (नदी द्वारा बहा कर लायी गयी मिट्टी), देवमात्टिका (वर्षा जल युक्त)

वर्षा से सिंचित और जल स्रोतों से सिंचित फसलें

ऋग्वेद में जल के दो प्रकार बताए गए हैं- खनित्रिमा एवं स्वयंजा-

या आपो दिव्या उत या स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा यः स्वयंजाः। (ऋग्वेद 7/49/2)

नदी के जल को 'स्वयंजा' एवं कूपादि के जल को **'खनित्रिमा'** कहते हैं। कूप से जल निकालने की प्रक्रिया ऋग्वेद में बताई गई हैं। नारी बनाकर जल खेत में पहुँचाया जाता था। कृषि पराशर में नलारोपण के बारे में बताया गया है। इसके द्वारा जल के अभाव में सिंचाई का कार्य किया जाता था।

अथ कार्तिक सटान्त्यां क्षेत्रे च रोपयेन्नलम्।

केदारेशानकोणे च सपत्नं कृषकः शुचिः।। (कृ.प. 198)

भारत में फसल उत्पादन, मौसमी मानसून पर निर्भर करता था।

कृषि पराशर में वर्षा सम्बन्धी भविष्यवाणी की मुख्य तकनीक आकाश में सूर्य तथा चन्द्रमा की स्थिति पर निर्भर थी। बृहत्संहिता में मौसमी वर्षा की भविष्यवाणी नक्षत्रों पर आधारित थी।

वर्तमान समय में भी किसान इन पद्धतियों पर आधारित मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी के आधार पर कृषि कार्य करते हैं।

सिंचित फसलों को जलाशयों, नहरों के द्वारा सिंचित किया जाता था।

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कत्र्वं हविः। (अथर्व. 1.4.3)

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में नदियों एवं जलाशयों का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषि जलाशयों का निर्माण जानते थे।

फसलों की सिंचाई के लिए एक जोड़ी बैल की सहायता से चमड़े के पात्र के द्वारा कुएँ से पानी निकालकर छोटी नहरों द्वारा खेतों में पहुँचाया जाता था।

सिन्धु घाटी सभ्यता के घोलावीरा में विशाल जलाशय का निर्माण किया गया जिससे सिंचाई कार्य हो सके।

कर्दममग्नहलमुखकर्षण शिथिले पत्यौ प्रसुप्ते।

अप्राप्त मोहनसुखाधनसमयम् पामरी शपति।।

महापुराण के अनुसार कृषक भोले-भाले, धर्मात्मा, वीतदोष तथा क्षुधा इत्यादि क्लेशों के

सहिष्णु तथा तपस्वियों से बढ़कर होते थे। महापुराण में मानव की आजीविका हेतु छह प्रमुख साधनों का उल्लेख है-असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या तथा वाणिज्य। जैन पुराणों से ज्ञात होता है कि उस काल में जीविका के मुख्य आधार कृषि तथा पशु-पालन थे।

कृषि में कुशल किसान कृषि पराशर कहलाता था। हलों की संख्या कृषि की समृद्धि को बताने वाली थी और गृहस्थ को स्वयं खेती करने का आदेश था। ऋग्वेद में लोगों को कृषि करने का स्पष्ट आदेश मिलता है।

'अक्षैर्मा दीव्या कृषिमित्कृषस्व'। अथर्ववेद में जुआरी को भी जुआवृत्ति छोड़कर कृषिकर्म में प्रवृत्त होने की सलाह दी गई है। इतना ही नहीं, राजा के लिए भी आदेश है कि वह कृषि को विशेष रीति से संवर्धित करे 'नो राजां नि कृषिं तनोतु'। अथर्ववेद में ही पृथ्वी सूक्त के अंतर्गत भूमि को माता माना गया है और मानव को उसका पुत्र अर्थात् 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'।

महाभारत में (शांति पर्व 89/24) उल्लेख है कि कृषक तथा वणिक ही राष्ट्र को समृद्ध बनाते हैं इसलिए राजा को समाज के इस महत्त्वपूर्ण वर्ग पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए 'नरश्तेतरक्ष्य वाणिज्यं चाप्यनुष्ठित''।

उद्योग पर्व (38/12) में स्पष्ट उल्लेख है कि गृहस्थ को खेती का कार्य दूसरों पर न डालकर स्वयं करना चाहिए, इसी की गूँज घाघ की कहावतों में मिलती है उत्तम खेती जो हर गहा।-

'कृषि पाराशर' में लिखा है-

अन्नं तु धान्यं संभूतं, धान्यं कृष्या विनान च।

तस्मात् सर्वे परित्यज्य कृषि यत्न च कारयेत।।

भारतीय कृषकों को ईश्वर तथा उसकी शक्ति में विश्वास था इसीलिए वे कृषि को प्रकृति की अनुकंपा पर निर्भर समझते थे और उत्तम सस्य तथा वर्षा के लिए जल के देवता वरुण, इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं को पूजते थे। वे कृषि कार्य शुरू करने के समय तथा उसके समापन के समय भी कुछ मंत्रों का उच्चारण करते थे। वे शुभ मुहूर्त में ही कृषि कार्य प्रारंभ करते थे और सामयिक वर्षा के लिए यज्ञ करते थे।

महाभारत में विदुर ने कहा है कि जिसे कृषि का ज्ञान न हो वह समिति में प्रविष्ट न हो- न नः स समिति गच्छेद यश्चनोमि वपेत कृषिम्।

कृषि में प्रयुक्त उपकरण

वेद में प्रार्थना की गई है कि अच्छे कालयुक्त हल भूमि को सुखपूर्वक जोतें। शनुं सुफाला विकृषंतु भूमिम् (ऋग्वेद-12/69)। वैदिक ऋषि हल की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि हल ही अन्नोत्पादन का प्रमुख साधन है। सांगलं परीरवत्सुशेव सोमपित्सरु (ऋग्वेद 12/7) बिना खेत की जुताई किए बीज वपन की निंदा की गयी है, रेतः सः०देवं तद्दकृष्टे वपति (शतपथ ब्रा. 7/2/2/5)। यजुर्वेद में भी हल का वर्णन मिलता है। सीरा युज्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् धीरा देवेषु सुम्नया (यजु. 12/67)।

कृषिपराशर में हल के विविध अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। हल के आठ से दस भाग बताए गए हैं-

1. ईषा **(Beam)** - जिस दंड में हल बाँधा जाता था उसे ईषा कहते हैं।

2. युग **(Yoke)** - जिसमें बैल जोते जाते हैं।

3. स्थाणु **(Wooden support)** - लकड़ी जो लोहे के फाल के साथ जोड़ी जाती है।

4. निर्योल **(Steering rod)** - वह दंड जो मुख्य दंड से जुड़ा होता था।

5. निर्याल पाशिका **(Handle)** - वह मुठिया जिसे पकड़कर हल जोता जाता है।

6. अड्डचल्ल **(Wooden pegs)** - लकड़ी की खूँटी।

7. शौल **(Plowshare)** - लोहे का फाल जो मिट्टी खोदता है।

8. पंचनिका **(Stick)** - बैलों को हाँकने का दंड।

शुन हंसु फाला वि कृषन्तु भूमि हंशुनं कीनाशाऽअभियन्तु वाहैः। ***(यजुर्वेद.12.69)***

इस यजुर्वेदीय मन्त्र में भूमि की जुताई अच्छे हल द्वारा करने का वर्णन है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषि कृषि करने की विधि से परिचित थे। फसल बुआई के पूर्व भूमि को हल द्वारा जोतना (उलट-पुलट करना) जानते थे।

ऋग्वेद में हल की प्रशंसा की गई है, क्योंकि हल ही अन्नोत्पादन का प्रमुख साधन है।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाग्लम्।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिग्य।। ***(अथर्व.3.17.6,ऋग्वेद.4.57.4)***

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में बीज बुआई से पहले खेत ठीक ढंग से तैयार करने का उल्लेख है।

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।

विराजः श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः

पक्कमा यवन्।। ***(अथर्व. 3.17.1.2, ऋग्वेद. 10.101.3, यजु0 12.68)***

ऋग्वेद के इस मन्त्र में बैलों के कन्धों पर हल स्थापित करने का उल्लेख किया गया है एवं बीज बुआई का उल्लेख है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि हमारे पूर्वज कृषि उपकरणों का प्रयोग करना जानते थे।

लाग्लं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु।

उदिद्वपतु गमव्रि प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफव्र्यम्।। ***(अथर्व. 3.17.3)***

इन अथर्ववेदीय मन्त्र में लोहे के फाल वाले हल का वर्णन किया गया है।

रेतः सिचदेवं तद्धदकृष्टे वर्पात। ***(शतपथ ब्रा. 7/2/2/5)***

अथर्ववेद में हल का वर्णन मिलता है।

सीरा युज्न्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक।

धीरा देवेषु सुम्नयौ। ***(अथर्व 3.17.1)***

कृषि परासर में हल के विविध भागों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। हल के 10 भागों के नाम बताए गए हैं-

1. ईषा- जिस दण्ड से हल बाँधा जाता था, जिसमें बैल जोते जाते हैं।

2. युग- जिसमें बैल जोते जाते हैं।

3. स्थाणु- लकड़ी जो लोहे के फाल के साथ जोड़ी जाती है।

4. निर्योल- वह दण्ड जो मुख्य दण्ड से जुड़ा होता था।

5. निर्योल पाशिका- वह मुठिया जिसे पकड़कर हल जोता जाता है।

6. अंचल्ल-लकड़ी की खूँटी।

7. शील-लोहे का फाल जो मिट्टी खोदता है।

8. पानी को-बैलों को हाँकने का दण्ड।

9. योक्त्र- बैलों को जोतने के लिए गले में बाँधी जाने वाली रस्सी।

10. रज्जु- हल के पूर्व भाग की पृष्ठ भाग से जोड़ने वाली रस्सी।

बीज और बुआई

फसल की उत्पादन क्षमता बीज की गुणवत्ता पर निर्भर होती है। सबसे पहले बीज की सफाइ करना चाहिए। इसमें घुन, कीड़े न लगे हो तथा घृत, मक्खन, तेल न लगा हो। उसे धूप में सूखाकर रखना चाहिए। जमीन पर नहीं फैलाना चाहिए ऐसा करने पर बीजों में नमी आ सकती है। बीजों में एकरूपता होनी चाहिए। माघ एवं फाल्गुन के महीने में ही बीज इकट्ठे कर लेना चाहिए।

माघे वा फाल्गुने मासि सर्वबीजानि संहरेत्।

शोषयेदातपे सम्यकृ नैवाधो विनिधापयेत्।।

बीजस्य पुटिकां कृत्वा विधान्यं तत्रा शोधयेत्।

बीजं विधान्यसंमिश्रं फलहानिकर परम्।।

एकरूपं तं यद् बीजं फलं फलति निर्भरम्।

एकरूपं प्रयत्नेन तस्मात् बीजं समाचरेत्।

सुदृढं पुटकं कृत्वा तृणं छिन्द्यात् विनिर्गतम्।

आच्छिन्नतृणके ह्यस्मिन् कृषिः स्यात् तृणपूरिता।।

(कृ.पृ. 157.160)

बीज दीमक वाले स्थान पर, पशु रहने वाले स्थान में नहीं रखना चाहिए। दीपर्, अग्नि, धूम (धुआँ, वर्षा से सम्पृष्ट बीज फलदायी नहीं होता है।

दीपाग्निधूमसंपृष्टं वृष्टया चोपहतं च यत् र्जनीयं सदा

बीजं यत् गर्तेषु पिधापितम्। *(कृ.प.164.168)*

कृषि पाराशर में बताया गया है कि समय बीत जाने पर बीज बुआई से लाभ नहीं होगा। बीज बुआई के बाद उन पर हल्की मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

बीजस्य वपनं कृत्वा मयिकां तत्र दापयेत्।

तदभावेन बीजानां समजन्म न जायते।। *(कृ. प. 182)*

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति।

एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु।। *(अथर्व. 10.6.33)*

इस अथर्ववेदीय मन्त्र में भूमि में उत्तम बीज बुआई का उल्लेख किया गया है।

कृते यौनो वपतेह बीजम्। *(यजुर्वेद, 12.68)*

यजुर्वेद में भू-परिष्कार के बाद ही बीज बोये जाने का उल्लेख किया गया है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में उत्तम बीजों के चयन करने के उपरान्त ही बीजारोपण करने का उल्लेख है।

प्रत्यारोपण -

बीज के दो प्रकार है। प्रथम बुआई करने वाले तथा दूसरे जिनका प्रत्यारोपण किया जाता है। प्रत्यारोपण किये जाने वाले पौधों में रोग का भय रहता है।

वपनं रोपणं चैव बीज स्यादुभयात्मकम्, वपनं रोगनिर्मुक्तं रोपणं सगदं सदा।

(कृ.प.183)

खाद-

पौधों की बीमारियों से लड़ने की क्षमता को बढ़ाने तथा फसलों की उत्पादक क्षमता बढ़ाने के लिए गोबर की खाद का प्रयोग किया जाता था।

धूप में गोबर सुखाकर, महीन कूटकर खेतों के गडढे में फाल्गुन मास में रखना चाहिए।

रोद्रे संशोठय तत्सर्वं कृत्वा गुण्डकरूपिणम्,

फाल्गुने प्रतिकेदारे सारं गर्ते निधापयेत्।। *(कृ.प.110)*

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।

बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन।। *(अथर्व..3.14.3)*

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।

उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन्।। *(ऋग्वेद 1.164.43)*

इस ऋग्वेदीय मन्त्र में कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद के उपोग करने का उल्लेख है। खाद के लिए करीष, शकन और शकृत् (गोबर) शब्दों का प्रयोग किया गया है।

पौधों की सुरक्षा-

पौधों की कीटों से सुरक्षा के लिए जैव रसायन का प्रयोग करते थे। यजुर्वेद के इस मन्त्र में इसका वर्णन हैं।

स व्वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन।

सछ.रेवतीर्जगतीभिः पृचन्तां सम्मधुमतीर्म्मधुमतीभिः

प्रश्चञ्चन्तम्।।

कृषकों को पौधों की सुरक्षा के उपाय करने का उल्लेख दिया गया है एवं पौधों में कीटों के द्वारा रोग की संभावना के बारे में उल्लेख है।

पशुपालन-

पशुपालन को संपन्नता का प्रतीक माना जाता था। ऋग्वेद में पशुओं के रहने के स्थान, घास खाने के स्थान व जल पीने के लिए स्वच्छ तालाब के बारे में बताया गया है।

कन्नड़ ग्रन्थ लोकोपकार में पशुओं के उपचार के बारे में बताया गया है। सींग, दांत, माँसपेशियों के उपचार की विधि बताई गई है तथा टूटी हुई हड्डियों के उपचार के लिए औषधियों का उपयोग किया गया था।

पशुओं की देखरेख, पशुधन की जनगणना, बैल को प्रशिक्षित करने के लिए एक पशुधन अधीक्षक की नियुक्ति का वर्णन अर्थशास्त्र में दिया गया है।

उद्यानिकी -

हड्प्पा के लोग खजूर, अनार, नींबू और तरबूज जैसे फलों की खेती करते थे। बृहत्संहिता में ग्रांफ्टिंग विधि (कलम तैयार करने) का उल्लेख किया गया है।

उत्सव -

धान की कटाई के बाद पौष अर्थात् जनवरी में उत्सव आयोजित करने की परम्परा रही है। यह परम्परा आज भी मकर संक्रांति के अवसर पर मनाई जाती है। दक्षिण भारत (तमिलनाडु) में 'पोंगल' के रूप में त्यौहार मनाया जाता है तथा पंजाब में बैसाखी एवं असम में बिहु के रूप में धान उत्सव मनाया जाता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। यहाँ की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि ही रही है। प्राचीन भारत की भौगोलिक बनावट कृषि और कार्यों के अनुकूल रही है। हिमालय से उद्भूत गंगा, सिन्धु और ब्रह्मपुत्र की घाटियों के विस्तृत मैदान, मानसूनी हवाओं द्वारा बरसायें गये प्रभूत जल के कारण भरपूर आर्द्रता और मिट्टी की सहज उर्वरता के कारण उत्तरी भारत के मैदानी भाग तो कृषि के अत्यन्त अनुकूल थे हीं, मालवा के मैदान, नर्मदा और ताप्ती के दुकूल एवं महानदी, कृष्णा तथा गोदावरी के मैदान भी उनसे बहुत पीछे नहीं थे।

भारत में पाषाण युग में कृषि का विकास कितना और किस प्रकार हुआ था इसकी संप्रति कोई जानकारी नहीं है। किन्तु सिंधु नदी के काँठे के पुरावशेषों के उत्खनन के इस बात के प्रचूर प्रमाण मिले हैं कि आज से पाँच हजार वर्ष कृषि उन्नत अवस्था में थी और लोग राजस्व अनाज के रूप में चुकाते थे, ऐसा अनुमान पुरातत्वविद् मोहनजोदड़ों में मिले, बड़े-बड़े कोठरों के आधार पर करते हैं। वहाँ से उत्खनन में मिले गेहूँ और जौ के नमूनों से उस प्रदेश में उन दिनों इनके बोये जाने का प्रमाण मिलता है। वहाँ से मिले गेहूँ के दाने ट्रिटिकम कंपैक्टम अथवा ट्रिटिकम स्फीरोकोकम जाति के हैं। इन दोनों ही जाति के गेहूँ की खेती आज भी पंजाब में होती है। यहाँ से मिला जौ हार्डियम बलगेयर जाति का है। इसी जाति के जौ मिस्र के पिरामिडों में भी मिलते हैं। कपास की खेती के लिए सिंध की आज भी ख्याति है, उन दिनों भी प्रचुर मात्रा में कपास की पैदावार इन क्षेत्रों में होती थी। आर्य कृषि कार्य से पूर्णतया परिचित थे, यह वैदिक साहित्य से स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में कृषि संबंधी अनेक ऋचाएँ हैं जिनमें कृषि संबंधी उपकरणों का उल्लेख तथा कृषि विधा का परिचय मिलता है। ऋग्वेद में क्षेत्रपति, सीता और शुनासीर को उल्लेखित कर रची गई एक ऋचा (4.57-8) है, जिससे वैदिक आर्यो के कृषि विषयक ज्ञान का बोध होता है-

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लागलम्।

शुनं वरत्रा बध्यंतां शुनमष्ट्रामुदिगय।।

शुनासीराविभां वाचं जुषेथां यद् दिविचक्रयुः पयः।

तेन मामुप सिंचतं।

अर्वाची सभुगे भव सीते वंदामहे त्वा।

यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलासिस।।

निष्कर्ष -

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि चिरकाल से ही वनस्पति मानव जीवन का अभिन्न अंग रही है। सृष्टि के आदिम काल से ही वह प्रकृति प्रदत्त उपहारों का प्रयोग करता चला आया है। यथा-घास, फूस के घर बनाना, लकड़ियों को ईंधन के रूप में प्रयोग करना आदि। सृष्टि के विकास के साथ-साथ वह पौधों से प्राप्त होने वाली औषधियों, जड़ी-बूटियों आदि तक का प्रयोग करने लगा था। कोई वनस्पति तो पूर्ण आहार मानी जाने लगी। यथा ऋग्वेद में 'सोम' को स्फूर्तिदायक और बलवर्धक कहा है। ऋग्वेद में प्राप्त पादप-वर्णन, अथर्ववेद में औषधि प्रयोग, मनुस्मृति में उद्भिद सृष्टि और उसका अंतश्चेतना से युक्त होना इस बात को प्रमाणित करता है कि यह सृष्टि जितनी पुरानी है, वनस्पति जगत् भी उतना ही पुराना है। लेकिन विज्ञान के रूप में इसका पृथक् रूप से अध्ययन बाद में किया जाने लगा।

जुर्वेद में भू-परिष्कार के बाद ही बीज बोये जाने का उल्लेख किया गया है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में उत्तम बीजों के चयन करने के उपरान्त ही बीजारोपण करने का उल्लेख है।

फसल की उत्पादन क्षमता बीज की गुणवत्ता पर निर्भर होती है। सबसे पहले बीज की सफाइ करना चाहिए। इसमें घुन, कीड़े न लगे हो तथा घृत, मक्खन, तेल न लगा हो। उसे धूप में सूखाकर रखना चाहिए। जमीन पर नहीं फैलाना चाहिए ऐसा करने पर बीजों में नमी आ सकती है। बीजों में एकरूपता होनी चाहिए। माघ एवं फाल्गुन के महीने में ही बीज इकट्ठे कर लेना चाहिए।

पौधों की बीमारियों से लड़ने की क्षमता को बढ़ाने तथा फसलों की उत्पादक क्षमता बढ़ाने के लिए गोबर की खाद का प्रयोग किया जाता था। धूप में गोबर सुखाकर, महीन कूटकर खेतों के गडढे में फाल्गुन मास में रखना चाहिए।

REFERENCES

1. वैदिक साहित्य और संस्कृति, आ. बलदेव उपाधाय, पृ. 3
2. संस्कृति में विज्ञान: डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी- पृ. 145
3. पर्यावरण चेतना, अखण कुमार- पृ. 87
4. यजुर्वेद- 19/43
5. ऋग्वेद- 10/186
6. ऋग्वेद- 10/137/2-3 अथर्ववेद- 4/1322-23
7. अथर्ववेद-19/2/1-2
8. यजुर्वेद- 6/22
9. ऋग्वेद- 10/23/19
10. ऋग्वेद-7/49/3
11. संस्कृत में विज्ञान- डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी- पृ0 145
12. संस्कृत में विज्ञान- डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी- पृ0 54
13. वृक्षायुर्वेद - 271-272
14. पुष्पांग सूत्र, संस्कृत में विज्ञान - पृ0 52
15. ऋ.सं. 4/57
16. ऋ.सं. 10/10/3, 4: अथर्व. 3/17/1.2
17. ऋ.सं. 4/57/4; अथर्व. 2/8/16
18. षडयोगं सीरमनु। 8/9/16
19. सीरा युज्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। 3/17/1 युनक्त सीरा वि युगा तनोत। 3/17/2
20. शुनं वरत्रा बध्यन्ताम् 3/17/6
21. अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, सातवलेकर, 1958, भाग 1, काण्ड 3 पृ0 75
22. Atharva veda samhita, W.D. Whitney, Motilal Banarsidass, 1962 [Vol. I, p. 115.]
23. लांङ्लं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु। 3/17/3
24. शुनं कृषतु लाङ्लम्। 3/17/6
25. शुनासीरेह स्म मे जुषेधाम्। 3/17/7: द्रष्टव्य- ऋ0सं0 4/57/5, 8
26. शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै। 3/17/5
27. शुनो वायुः सीर आदित्यः। निरूक्त 9/40